Introduction

:: प्राक्कथन ::

साहित्य की सभी विधाओं में उपन्यास मुझे सर्वाधिक प्रिय रहा है । "उपन्यास" शब्द उप+ न्यास के योग से व्युत्पन्न हुआ है । "उप" अर्थात् समीप और "न्यास" अर्थात् रखना । अभि-प्राय यह कि उपन्यास हमें जीवन के करीब रखता है । अर्थात् जीवन के नजदीक ले जाता है । पाश्चात्य आलोचक सिसरो कहते हैं — " ड्रामा इज़ ए कापी आफ लाईफ , ए मिरर आफ कस्टम , ए रीफ्लेक्शन आफ ट्रुथ . " अर्थात् नाटक जीवन की प्रतिलिपि है , वह {सामाजिक} रीति-रिवाजों का आईना है और सत्य का प्रतिबिंब है । लगभग यही बात हम उपन्यास के संदर्भ में भी कह सकते हैं । उपन्यास भी हमारे समाज-जीवन का आईना है । कार्ल मार्क्स ने कभी बाल्जाक के उपन्यासों के संदर्भ में कहा था कि मैं फ्रान्स को जितना उनके इतिहासविदों , समाजशास्त्रियों तथा अन्य विद्वानों से नहीं जान पाया उतना बाल्जाक के उपन्यासों द्वारा जान पाया हूं । मानव-सभ्यता के प्रारंभ से ही मनुष्य , मनुष्य की अभिरुचि का विषय रहा है और मानव-चरित्र की पहचान जितनी उपन्यास के द्वारा होती है , उतनी अन्य साहित्य-रूप से नहीं । शायद इसीलिए मुंशी प्रेमचन्द कहते हैं — " मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूं । " मानव-अनुभव का महत्त्व है , परन्तु एक व्यक्ति के अनुभव की भी अपनी सीमाएं होती हैं । उपन्यासों के द्वारा हमें अनेक लोगों के अनुभव का ज्ञान प्राप्त होता है । प्रोफेसर एच. जे. मूलर ने उपन्यास के संदर्भ में यही तो कहा है — ए नोवेल इज ए रीप्रेजेण्टेशन आफ ह्युमन एक्सपीरि-अन्स . " अर्थात् उपन्यास मानव-जीवन के अनुभव का प्रस्तुतिकरण है । संक्षेप में मानव-जीवन के अध्ययन के लिए , किसी काल-विशेष के सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक जीवन को जानने और समझने के

लिए उपन्यास से बेहतर माध्यम और कोई नहीं हो सकता ।

मेरे पिताजी वांकानेर हाईस्कूल (ता. सावली , जि. बड़ौदा) में सेवारत है । अतः मैंने हाईस्कूल की लायब्रेरी का भरपूर फायदा उठाया था । दिवाली और गर्मियों की छुट्टियों में हाईस्कूल की लायब्रेरी से मैं ज्यादातर "गुजराती नवलकथा" ले आता था और इस प्रकार चुनीलाल वर्धमान शाह , र.व. देसाई , पन्नालाल पटेल , कन्हैयालाल मुंशी , आदि गुजराती के शीर्षस्थ उपन्यासकारों के उपन्यासों को हाईस्कूल और कालेज के दिनों में पढ़ लिया था । मैंने अपना बी.ए. तथा एम.ए. कला संकाय , म.स. विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग से किया है । दोनों की उपाधियां मैंने मुख्य विषय हिन्दी लेकर प्रथम श्रेणी में उपलब्ध की है । अतः एस.वाय. बी.ए. के पश्चात् हिन्दी साहित्य से मैं अधिक रूबरू होने लगा । मेरी अभिरूचि तो उपन्यास की ओर ही थी , अतः अब छुट्टियों में तथा अन्य अवकाश में हिन्दी उपन्यासों का पठन शुरू हुआ । उन दिनों में मेरा परिचय हिन्दी विभाग के प्रज्ञाचक्षु छात्र श्री सलीमभाई व्होरा से हुआ । सलीमभाई के लिए मैंने "राइटर" का काम भी किया है । सलीमभाई प्रज्ञाचक्षु थे और हिन्दी विभाग के डा. चारूकान्त देसाई साहब के मार्गदर्शन में "शैलेश मटियानी के कथा-साहित्य " पर शोध-कार्य कर रहे थे , इस सबब उनके लिए अनेक उपन्यासों का पठन मैंने किया है । मैं शैलेश मटियानी की भाषा-शैली से अत्यधिक प्रभावित हुआ । और तभी मैंने अपने तई संकल्प कर लिया था कि कभी अवसर प्राप्त हुआ तो मटियानीजी के उपन्यासों की भाषा पर काम करूंगा । सलीमभाई तो सन् 1991 में पी-एच.डी. हो गये । हिन्दी में पी-एच.डी. करने वाले वे प्रथम प्रज्ञाचक्षु छात्र थे । इसी उपलक्ष्य में सलीमभाई , अब डा. सलीम व्होरा , तथा देसाई साहब उभय का तत्कालीन राष्ट्रपति महामहिम वेंकटरमण द्वारा अभिवादन भी हुआ था । सन् 1993 में मैंने एम.ए. किया । परन्तु

बीच में कुछ व्यवधान आ गए , अतः सन् 1997 में देसाई साहब के निर्देशन में ही पी-एच.डी. के लिए मैं पंजीकृत हो गया । उसके बाद भी अनेक सामाजिक, आर्थिक , मानसिक , स्वास्थ्य-विषयक व्यवधान आते गये और मेरा काम खींचता गया ।

एम.ए. के उपरान्त मैंने देसाई साहब का संपर्क किया और अपनी इच्छा प्रकट की कि मैं "शैलेश मटियानी" पर कार्य करना चाहता हूँ । उन्होंने तपाक से बताया कि उन पर तो काफी काम हो चुका है । मैंने दबे स्वर में कहा कि मैं उनके उपन्यासों की भाषा पर क्या कार्य नहीं कर सकता ? उनकी आँखों में एक चमक दिखी और फिर कहा कि भाषा पर कार्य करना लोहे के चने चबाने जैसा है , क्या तुम कर पाओगे ? मैंने उन्हें बताया कि "सर , भाषा भी मेरा प्रिय विषय रहा है ! शुरू से ही भाषा और व्याकरण की ओर मेरी रुचि सविशेष रही है । एम.ए. में भाषाविज्ञान मेरा सबसे प्रिय विषय रहा है । उनके हावभावों से प्रतीत हुआ कि मेरे उत्तर से वे काफी संतुष्ट और प्रभावित थे । सद्‌भाग्य से एम.ए. में देसाई साहब का प्रिय विषय भी "भाषाविज्ञान" था जिसमें उन्होंने लगभग 80 प्रतिशत गुणांक प्राप्त किए थे । अतः उनकी और बाद में मेरी बाछें खिल गईं जब हमने शोध-कार्य हेतु विषयांग { टोपिक } तय किया -- " शैलेश मटियानी के उपन्यासों की भाषा : एक अनुशीलन " । फिर अनेक बैठकों के उपरांत दिनांक 27-3-1997 को उपर्युक्त विषयांग पर मेरा पंजीकरण हो गया । उस बीच में देसाई साहब ने शोध-अनुसंधान की विधि , प्रक्रिया तथा उसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म बारीकियों से मुझे अवगत कराया । उसका प्रबंधन कैसे होता है , अलग-अलग अध्यायों में आलोच्य विषय का अध्यायीकरण { चैप्टराइजेशन } कैसे करना होता है , संदर्भ-संकेत बताने की क्या विधि है , हम किस विधि का अनु-

सरण करेंगे, "संदर्भिका" क्या होती है, उसे तैयार करने के लिए शुरू से ही किन बातों में एहतियात बरतना होता है, "संदर्भिका" या "ग्रन्थानुक्रमणिका" (बिब्लिओग्राफी) को कैसे तैयार किया जाता है। इन तमाम तथ्यों से प्रत्यक्षतः कुछ प्रबंधों को सामने रखकर मुझे समझाया। तब मुझे ज्ञात हुआ कि अपनी रुचि हेतु पढ़ना एक बात है और शोध-अनुसंधान हेतु पढ़ना दूसरी बात है। उसमें भी भाषा पर काम करना तो टेढ़ी खीर है। गुजराती "लोकोक्ति" का प्रयोग करूं तो " केळी चीजरिए सो थाय " इसकी उसकी खबर अब हुई।

शैलेश मटियानी के उपन्यासों में "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई", "ओरीबली से बोरीबन्दर तक", "होलदार", "चौथी मुट्ठी", "सुख सरोवर के हंस", "चंद औरतों का शहर", "आकाश कितना अनंत है", "छोटे-छोटे पक्षी", एक मूठ सरसों", "चिट्ठीरसैन", "गोपुली गफूरन", "बावन नदियों का संगम", "बर्फ गिर चुकने के बाद", "जलतरंग" आदि उपन्यासों को मैं पहले पढ़ चुका था। परन्तु अब उनको नये सिरे से, भाषा की दृष्टि को सामने रखकर पढ़ना था। जैसे मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के संदर्भ में कहा गया है — " सायकोलोजिकल नावेल्स आर नोट टु रीड, बट टु रीरीड " — अर्थात् मनोवैज्ञानिक उपन्यास एक बार पढ़ने की वस्तु नहीं, बल्कि बारबार पढ़ने की वस्तु है; ठीक उसी प्रकार कहना हो तो कह सकते हैं कि शोध-कार्य हेतु अपने उपजीव्य ग्रन्थ एक बार पढ़ने की नहीं, अपितु बारबार पढ़ने की वस्तु है। एक-एक उपन्यास के न जाने कितने-कितने पाठ करने पड़ते हैं।

उपन्यास में भाषा का महत्व अपरिहार्य है। उपन्यास की जितनी भी परिभाषाएं मिलती हैं उन सबमें एक बात तो स्पष्ट रूप से कही गयी है कि उपन्यास गद्य की विधा है। राल्फ फोक्स

महोदय तो उसे मानव-जीवन का गद्य करार देते हैं । काव्य-भाषा और औपन्यासिक भाषा में एक निश्चित अंतर तो रहेगा ही । उपन्यास की भाषा पर पात्र और परिवेश का प्रभाव पड़ता है । भाषा से कई बार मनुष्य का चरित्र परिभाषित होता है । गुजराती के एक कवि ने बिलकुल सही कहा है कि — " कोयलड़ी ने काग वाने वरताये नहीं , एनो जीभलडीए जवाब साचुं सोरठियो भणे ।" कोयल और काग एक ही वर्ण के होते हैं , परन्तु जब वे बोलते हैं तब उसकी परख होती है कि कौन कोयल है और कौन काग है । वह कथा भी बहुत ही प्रसिद्ध है , जिसमें एक अंध साधु महात्मा केवल भाषा के आधार पर पहचान लेते हैं कि कौन राजा है , कौन मंत्री है और कौन सेवक है ।

ऐसे ही स्थान-विशेष के लिए भी कहा गया है — कोश कोश पर बदले पानी , और चार कोश पर बानी । प्रत्येक जगह की अपनी एक भाषा होती है । उसके "लहजे" और "टोन" होते हैं । गुजरात का ही उदाहरण लें तो गुजरात प्रदेश की भाषा तो गुजराती है , परन्तु मध्यगुजरात की भाषा , सूरत तरफ की बोली , उत्तर-गुजरात की बोली , काठियावाड़ की बोली इन सबमें काफी अंतर पाया जाता है । यहाँ तक कि उनकी गालियों में भी फरक आ जाता है । हिन्दी के साथ भी यही है । हिन्दी तो एक बहुत बड़े भू-भाग की भाषा है , अतः भाषागत वैविध्य उसमें भरपूर मिलता है ।

ईरा वालफर्ड ने औपन्यासिक भाषा का संबंध बोलचाल की भाषा "— स्पोकन लैंग्वेज — से बताया है । इस संदर्भ में गोविन्द मिश्र ने रेणु की भाषा की भूरि-भूरि प्रशंसा की है । मिश्रजी ने यदि मटियानीजी के उपन्यासों को देखा होता तो शायद अपनी रायशुमारी में एक नाम वह अवश्य जोड़ते । और वह नाम है शैलेश मटियानीजी का । पात्र , परिवेश के अनुसार उनकी औपन्यासिक भाषा में बहुस्तरीयता

मिलती है । उन्होंने हिन्दी भाषा के शब्द-भण्डार को बढ़ाया है और उसमें अनेक शब्दों का इजाफा किया है । जिस प्रकार अश्क और भीष्म साहनी के कारण हिन्दी में अनेक पंजाबी और उर्दू शब्दों का समावेश हुआ है, ठीक उसी प्रकार मटियानी, गोविन्दवल्लभ पंत, शिवानी, बटरोही आदि के कारण हिन्दी में कुमाऊं भाषा और बोली के अनेक शब्द समाविष्ट हुए हैं ।

इस प्रकार चार-पांच वर्षों के कठोर परिश्रम, अवगाहन, अध्ययन, अनुशीलन, वर्गीकरण तथा विश्लेषण के उपरांत उपर्युक्त विषय पर अपना शोध-प्रबंध प्रस्तुत कर सका हूं । अध्ययन की सुविधा तथा शोध-प्रबंध की समुचित नियोजना हेतु उसे मैं निम्नलिखित सात अध्यायों में विभक्त कर रहा हूं --

§1§ प्रथम अध्याय : विषय-प्रवेश

§2§ द्वितीय अध्याय : शैलेश मटियानीजी के उपन्यासों की कथावस्तु : भाषिक-संरचना के विशेष संदर्भ में

§3§ तृतीय अध्याय : पात्र-निरूपण में भाषा का योग

§4§ चतुर्थ अध्याय : कुमाऊं की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यासों की भाषा

§5§ पंचम अध्याय : नगरीय पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यासों की भाषा

§6§ षष्ठ अध्याय : मटियानीजी के उपन्यासों में नवीन भाषा-शिल्प एवं भाषा-शैली

§7§ सप्तम अध्याय : उपसंहार

प्रथम अध्याय विषय-प्रवेश का है । उसमें प्रबंध का विषय-प्रवर्तन किया है । शोध-प्रबंध मटियानीजी के उपन्यासों पर है, अतः यहां पर "उपन्यास : एक आधुनिक प्रकार", यूरोप में उपन्यास

का उद्भव , भारत में उपन्यास के उद्भव और विकास के कारक , हिन्दी गद्य का विकास , हिन्दी उपन्यास का विकास — पूर्व प्रेमचन्दकाल , प्रेमचन्दकाल और प्रेमचन्दोत्तर काल — उपन्यास में भाषा का महत्व , औपन्यासिक भाषा के संदर्भ में राल्फ फोक्स तथा ईरा वाल्फर्ट के अभिमत , औपन्यासिक यथार्थ और भाषा , एक ही उपन्यास में भाषा के कई-कई स्तर , एक ही उपन्यासकार की भाषा में विभिन्न स्तर जैसे मुद्दों की चर्चा करते हुए प्रबंध की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करने का यत्न किया है ।

दूसरे अध्याय का शीर्षक है — " शैलेश मटियानीजी के उपन्यासों की कथावस्तु : भाषिक-संरचना के विशेष संदर्भ में । " प्रस्तुत अध्याय में प्रारंभ में शैलेश मटियानीजी के जीवन-संघर्ष को रेखांकित किया गया है , क्योंकि साहित्यकार के व्यक्तित्व का प्रभाव उसकी भाषा पर पड़ता ही है । इसके साथ ही साथ यहां मटियानीजी की कुछ साहित्यिक-सांस्कृतिक अवधारणाओं को भी स्पष्ट किया गया है । इतनी भूमिका के बाद मटियानीजी के "हौलदार" , " चिट्ठीरसैन " , " सुख सरोवर के हंस " , "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई " , " कबूतरखाना" , "बोरीवली से बोरीबन्दर तक " , " छोटे-छोटे पक्षी " , "आकाश कितना अनंत है " , "रामकली" , "गोपुली गफूरन" , "बर्फ गिर चुकने के बाद" आदि उपन्यासों की कथावस्तु को उसकी भाषिक-संरचना के संदर्भ में जांचा-परखा गया है ।

तीसरे अध्याय में पात्र-निरूपण की प्रक्रिया में भाषा के योगदान को स्पष्ट किया गया है । यहां भी "हौलदार" , "चिट्ठी-रसैन" , " चौथी मुट्ठी " , "बोरीवली से बोरीबन्दर तक" , "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई" ; " नागवल्लरी " , " जलतरंग " , आकाश कितना अनंत है " , " चन्द औरतों का शहर " , "बावन

नदियों का संगम ", " बर्फ गिर चुकने के बाद" प्रभृति उपन्यासों के साक्ष्य में डूंगरसिंह , हरकसिंह , खिमुली, भिमुली , जैता , रमौती, कौशिला , रतनसिंह ममीमेमक्कि× डोंगरी , मोतिमा सस्तानी , पुरधुली आमा , नूर , दादा , सेठानी नर्मदाबेन , गंगूबाई केलेवाली , वस्ताद और पोपट , कृष्णा मास्टर , गायत्रीदेवी ठकुराइन , मिसेज खोसला, फादर परांजपे , बी.के. , कामरेड सूरज , मिसेज मैठाणी , आदि पात्रों की भाषा पर विचार किया गया है और पात्र-सृष्टि की प्रक्रिया में भाषा की क्या भूमिका हो सकती है उसकी सोदाहरण विवेचना हुई है ।

चौथे अध्याय में कुमाऊं की पृष्ठभूमि वाले उपन्यासों की भाषा पर विचार-विश्लेषण हुआ है । अध्याय के प्रारंभ में कुछ भाषागत प्रयोगों की चर्चा की गई है । उसके बाद संबंधवाची शब्द , रोजमर्रा के शब्द , गुजराती से मिलते-जुलते शब्द , कृषि-विषयक शब्द , व्यक्तिवाची नाम , संबोधनवाची शब्द , जाति-विशेष को सूचित करने वाले शब्द , कुमाऊं के लोकदेवता और उससे सम्बद्ध शब्दावली , लोकमान्यताओं -अंधविश्वास- तथा उससे सम्बद्ध शब्दावली ; कुमाऊं प्रदेश के कतिपय तीज-त्यौहार , संस्कार और उनसे संलग्नित शब्दावली , गालीवाचक शब्द , लोकोक्तियाँ और कहावतों का प्रयोग जैसे शीर्षकों के अंतर्गत कुमाऊं की पृष्ठ-भूमि पर आधारित उपन्यासों की भाषा पर विश्लेषणात्मक दृष्टि से विचार किया गया है । यहाँ जिन उपन्यासों से उदाहरण लिए गए हैं उनमें "हौलदार" , " चौथी मुट्ठी" , " एक मूठ सरसों" , " सुख सरोवर के हंस " , "नागवल्लरी" प्रभृति उप-न्यास हैं । उपन्यास का परिवेश उसकी भाषा को किस हद तक प्रभावित करता है इसे लक्षित करना इस क्षेत्र के शोध-कर्ता और खोजियों के लिए बड़ा रसप्रद हो सकता है ।

पाँचवे अध्याय में नगरीय पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यासों की भाषा पर विश्लेषणमूलक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । इस समूचे अध्याय को दो विभागों में रखा गया है । एक में बम्बइया-परिवेश वाले उपन्यासों को लिया गया है । ऐसे उपन्यासों में "बोरीवली से बोरीबन्दर तक" , " किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई " और "कबूतर-खाना " इत्यादि हैं । दूसरे विभाग में अन्य नगरों के परिवेश को व्यंजित करने वाली भाषा पर विचार किया गया है । इसमें "छोटे-छोटे पक्षी" , " आकाश कितना अनंत है " , -" जलतरंग" , रामकली" , " चंद औरतों का शहर" , " गोपुली गफूरन" , "माया सरोवर" , "बर्फ गिर चुकने के बाद " प्रभृति उपन्यासों के साक्ष्य पर उनकी भाषा को विभिन्न आयामों के तहत विश्लेषित किया गया है ।

षष्ठ अध्याय में मटियानीजी जी के उपन्यासों में नवीन भाषा-शिल्प एवं भाषा-शैलियों पर बड़ी गहराई से विचार किया गया है । यहां उन तमाम उपन्यासों को लिया है जिनके आधार पर मटियानीजी की भाषा पर पूर्ववर्ती अध्यायों में विचार-विमर्श करते रहे हैं । इस अध्याय को दो खण्डों में विभक्त किया है — {अ} मटियानीजी के उपन्यासों में उपलब्ध नवीन भाषा-शिल्प और {ब} मटियानीजी के उपन्यासों में प्रयुक्त विभिन्न भाषा-शैलियां । प्रथम खण्ड के अंतर्गत नये शब्द-रूप , नये क्रिया-रूप, नये उपमान , नये रूपक , नये विशेषण , नवीन कहावतों और मुहावरों के प्रयोग इत्यादि को सोदाहरण विश्लेषित किया गया है तो दूसरे खंडमें उन भाषा-शैलियों पर विचार हुआ है जिनका प्रयोग मटियानीजी ने किया है । ऐसी शैलियों में मधुर शैली , सरस शैली , विदग्ध शैली , व्यास शैली , समास शैली , प्रौढ़ि शैली , धारा शैली , तरंग शैली , मनोरंमिक शैली , सरितोपम शैली , लोककथात्मक शैली , कुमाऊंबोली वाली शैली , बम्बइया

शैली , लोकगीतवाली शैली , कविता के उद्धरण वाली शैली , चेतना-प्रवाह शैली , एब्सर्ड शैली आदि की उदाहरणसहित चर्चा की गई है ।

अंतिम अध्याय "उपसंहार" [एपिलॉग] का है । उसमें कोई नया मुद्दा न उठाते हुए पूर्ववर्ती अध्यायों के समग्रावलोकन द्वारा उनके निष्कर्ष और सार-संक्षेप को प्रस्तुत किया गया है । यहाँ बहुत संक्षेप में विधा की उपलब्धियों को बताते हुए उसमें भविष्यत् संभावनाओं को उकेरा गया है ।

"उपसंहार" के अतिरिक्त सभी अध्यायों में के अन्त में समग्रावलोकन की विधि से अध्यायगत निष्कर्षों को रखने की चेष्टा हुई है । संदर्भ-संकेत प्रत्येक पृष्ठ के नीचे न देते हुए आजकल की पद्धति का अनुसरण किया है और उन्हें अध्याय के अन्त में "सन्दर्भानुक्रम" शीर्षक के तहत रखा गया है । शोध-प्रबंध के अन्त में "संदर्भिका" [बिब्लिओग्राफी] के अन्तर्गत चार परिशिष्टों में उपजीव्य-ग्रन्थ तथा सहायक ग्रन्थों और पत्रिकाओं की सूची अकारादि क्रम से दी गई है । यहाँ उन ग्रन्थों का भी उल्लेख है जिनका कहीं परोक्ष ढंग से भी प्रयोग हुआ होगा या जो अनुसंधित्सु की चेतना में कहीं-न-कहीं रसे-बसे होंगे ।

इस कार्य को मैं जो सुचारु रूप से संपन्न करने जा रहा हूं उसमें अनेक महानुभावों का प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग रहा है । अनेक विद्वानों के ग्रन्थों का उपयोग भी मैंने किया है । उन सबके प्रति मैं हृदयपूर्वक आभार व्यक्त करता हूं । हिन्दी विभाग के अन्तर्गत समय-समय पर जो आचार्य आते रहे हैं उनके व्याख्यानों से भी मैं लाभान्वित व प्रेरित होता रहा हूं । उन आचार्यों में डा. नामवरसिंह , डा. राममूर्ति त्रिपाठी , डा. पवनकुमार मिश्र , डा. भगीरथ बड़ोले , डा. चौथेराम यादव , डा. अम्बाशंकर नागर , डा. मदनगोपाल गुप्त , डा. शिवकुमार मिश्र , डा. सनतकुमार व्यास , डा. कुंजविहारी वार्ष्णेय , डा. रमण-

भाई पटेल प्रभृति की गणना मैं कर सकता हूं । इन सब विद्वत्जनों के प्रति मैं श्रद्धावनत हूं ।

प्रस्तुत कार्य हिन्दी विभाग के अन्तर्गत हुआ है । जब मेरा पंजीकरण हुआ तब विभाग के अध्यक्ष डा. पी.एन. झा साहब थे । इस समय वे निवृत्त हो चुके हैं, परन्तु उनकी कृपा मुझ पर सदैव रही है । अतः इस अवसर पर मैं अपनी हार्दिक श्रद्धा उनके प्रति ज्ञापित करता हूं । पंजीकरण के कुछ महीनों बाद देसाई साहब प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हुए । अतः मेरे शोध-कार्य ~~का~~ - काल का अधिक समय तो उनकी अध्यक्षता में व्यतीत हुआ । वर्तमान समय में हिन्दी विभाग के कार्यकारी अध्यक्ष डा. विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी हैं, उनके प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं । उनके अतिरिक्त विभाग के अन्य प्राध्यापकों में डा. शैलजा भारद्वाज, डा. ओ.पी. यादव, डा. दक्षा मिस्त्री, डा. शन्नो पांडे, डा. कनुभाई निनामा, डा. कल्पना गवली, डा. एन.एस. परमार, डा. मनीषा ठक्कर आदि-आदि के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं । वांकानेर स्कूल के आचार्य, मेरे बड़े भाई श्री विनोद-भाई तथा मेरे फूफाजी नारायणभाई का भी मुझे बहुत सहयोग और प्रोत्साहन मिला है । अतः उनके प्रति कृतज्ञता का अनुभव मुझे हो रहा है ।

कोई भी महती कार्य माता-पिता के आशीर्वाद के बिना संपन्न नहीं हो सकता । मेरे इस सारस्वत-यज्ञ में मेरे माता-पिता की भूमिका अत्यधिक महत्व रखती है । अतः इस अवसर पर पिताश्री रतिलालभाई तथा मातुश्री शान्ताबेन के आशीर्वाद की मैं कामना करता हूं । इस पूरी प्रक्रिया में मेरी धर्मपत्नी का पूरा साथ-सहयोग रहा है । अतः उसका उल्लेख करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं ।

हमारी परंपरा में गुरु का महत्व एवं स्थान तो सर्वोपरि माना गया है । गुरु ब्रह्मा है, गुरु विष्णु है तथा गुरु महेश्वर है ।

प्रोफेसर डा. पारुकान्त देसाई मेरे गुरु हैं, मेरे मार्गदर्शक हैं। देसाई साहब अपने व्याख्यानों में प्रायः कहते हैं कि प्रत्येक अध्यापन कार्य से जुड़े व्यक्ति को शिक्षक से गुरु तक की यात्रा तय करनी ~~पड़ती~~ होती है। मैं समझता हूं कि देसाई साहब ने वह यात्रा तय कर ली है। ब्रह्मा की भांति उन्होंने मेरी चेतना की सृष्टि की है, शिक्षा देकर विष्णु की भांति आजीविका का साधन उपलब्ध कराके पोषण किया है और मेरे भीतर के षडरिपुओं का नाश करके महेश्वर का काम किया है। अतः उनको मेरे कोटि-कोटि प्रणाम। उनके~~xxxxxx~~ ऋण से मैं कभी उऋण नहीं हो सकता। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती लीनाबेन का मुझे अगाध स्नेह प्राप्त हुआ है, अतः उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूं।

अन्त में छायावाद के प्रेम और सौन्दर्य के कवि जयशंकर प्रसाद की निम्नलिखित काव्य-पंक्तियों के साथ विरमता हूं —

" यह नीड़ मनोहर कृतियों का यह विश्व कर्म रंगस्थल है,
है परंपरा लग रही यहां ठहरा जिसमें जितना बल है।"
§ "काम" सर्ग से उद्धृत §

दिनांक : 31-3-2006

विनीत,

§ महेश रतिलाल रबारी §

XXXXXXXXXXXXXXX